

## वेद, उपनिषद् एवं पुराणों में धर्म की अवधारणा : एक अध्ययन

अखिलेश कुमार त्रिपाठी एवं राघवेन्द्र पाण्डेय  
<https://doi.org/10.61410/had.v21i3.362>

### सारांश

भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में "धर्म" की संकल्पना व्यापक एवं बहुआयामी है। धर्म को केवल धार्मिक अनुष्ठान अथवा पूजा-पद्धति तक सीमित न मानकर भारतीय वाङ्मय में इसे व्यक्ति, समाज एवं समस्त सृष्टि के संतुलन और कल्याण से संबंधित जीवन-मूल्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

**बीज शब्द:** धर्म, वेद, उपनिषद्, पुराण, मनुस्मृति, श्रीमद्भगवद्गीता, सत्य, सदाचार, कर्तव्य, लोकमंगल।

आधुनिक युग के वर्तमान समय में विभिन्न मतमतांतरों ने धर्म का एक अलग ही रूप निकाल लिया है, जिसके परिणामस्वरूप अनेक झगड़े हो रहे हैं। लोग धर्म को मजहब और रिलिजन के रूप में देखते हैं, लेकिन धर्म का अर्थ इसके ठीक विपरीत है, अर्थात् बिल्कुल भिन्न है।

धर्म का अर्थ किसी मजहब, रिलिजन अथवा समुदाय से नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि से है। सनातन धर्म ईश्वर द्वारा प्रदत्त है और किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करता।

### धर्म का अर्थ

धर्म शब्द "धृ" धातु से बना है, जिसका अर्थ है धारण करना। "धारयति इति धर्मः" अर्थात् जो धारण करने योग्य है, वही धर्म है। प्रश्न यह उठता है कि क्या धारण करने योग्य है अथवा क्या नहीं धारण करने योग्य है? इसका उत्तर है कि जो वेदों, उपनिषदों एवं पुराणों में धारण करने योग्य बताया गया है वही धर्म है और निश्चित ही जो श्रेष्ठ है और श्रेष्ठ ही धारण करने योग्य है। धर्म सनातन है, जो किसी भी कालखण्ड में परिवर्तित नहीं होता।<sup>1</sup>

### धर्म के स्वरूप

धर्म शब्द से साधारण लोग पूजा-पाठ, अनुष्ठान आदि को ही समझते हैं, परन्तु धर्म का अर्थ बहुत ही व्यापक है।

### धर्म के प्रमुख दो भेद हैं।<sup>2</sup>

1-लोक धर्म 2-शास्त्र धर्म

#### 1. लोक धर्म

लोक धर्म से आशय उन सामान्य कर्तव्यों और आचरणों से है, जिनका पालन करने से व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण होता है। इसमें दूसरों के प्रति सम्मान, सहयोग, सद्भावना, सदाचार तथा समाज के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन प्रमुख है।

- शोध निर्देशक : (असिस्टेंट प्रोफेसर) समाजशास्त्र ,टी. एन. पी. जी. कॉलेज, टाण्डा, अम्बेडकरनगर
- शोधार्थी : समाजशास्त्र ,टी. एन. पी. जी. कॉलेज, टाण्डा, अम्बेडकरनगर

## 2. शास्त्र धर्म

राष्ट्रनियामक धर्म, शरीरनियामक धर्म, इन्द्रियनियामक धर्म, मनोनियामक धर्म, कुटुम्बनियामक धर्म यह भी शास्त्र धर्म के सोपानों में आते हैं।

### धर्म के लक्षण<sup>3</sup>

“वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ॥

मनुस्मृति के अनुसार वेद, स्मृति, सदाचार और अपने मन की परितुष्टि इन चार प्रकार के लक्षणों को धर्मज्ञ मुनिजन धर्म का प्रत्यक्ष लक्षण बताते हैं।

### धर्म के दस लक्षण

मनुस्मृति के अनुसार धर्म के दस लक्षण

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर् विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥<sup>4</sup>

धृति — धर्म का पालन करते हुए विषम परिस्थितियों में भी धैर्य बनाए रखना।

क्षमा — हानि, निंदा, अपमान, सहन कर क्षमा करने की भावना रखना।

दम — ईर्ष्या, मोह, लोभ, दोष जैसे विचारों से स्वयं को मुक्त रखना।

अस्तेय — चोरी, छल, अन्याय से दूर रहना।

शौच — तन और मन की पवित्रता को बनाए रखना। भी धर्म है।

इन्द्रिय निग्रह — इन्द्रियों को नियंत्रित रखकर धर्म के कार्य में लगाना। भी धर्म है।

धी — अपनी बुद्धि का अच्छे विचारों से विकसित करना।

विद्या — शास्त्र, वेद, विद्या का अध्ययन करते हुए ज्ञान का विकास करना भी धर्म को लक्षण है।

सत्य — मन, कर्म, वचन से सत्य का पालन करना।

अक्रोध — अनावश्यक क्रोध और किसी से प्रतिशोध की भावना से स्वयं को मुक्त रखना भी धर्म का लक्षण है।

### धर्म के प्रमुख लक्षण :

1—यतोऽभ्युदयनिश्चयसिद्धिः स धर्मः।<sup>5</sup>

2— चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।<sup>6</sup>

3—श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्।

शिष्टः पुनरकामात्मा। अगृह्यमाणकारणो धर्मः॥<sup>7</sup>

- 4— वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः ।  
 शिष्टाचीरोऽपरः प्रोक्तस् त्रयो धर्माः सनातनाः ॥<sup>8</sup>
- 5— श्रुतिस्मृतिभ्यां कथितं यत् स धर्मः प्रकीर्तितः ।  
 अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते ॥<sup>9</sup>
- 6— श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम् ।  
 एतत्त्रयोक्त एव स्याद् धर्मो नान्यत्र कुत्रचित् ॥<sup>10</sup>
- 7— वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।  
 वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम् ॥<sup>11</sup>
- 8— श्रुतिस्मृतिपुराणेषु प्रोक्तो धर्मः सनातनः ।  
 वर्णाश्रमानुरूपेण निषेव्यः सर्वदा जनैः ॥<sup>12</sup>
- 9— वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।  
 आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥<sup>13</sup>
- 10— विद्वद्भिः सेवितः सदिर्भर्तित्यमद्वेषरागिभिः ।  
 हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥<sup>14</sup>
- धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः ।  
 यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥<sup>15</sup>

“धारण” शब्द इस श्लोक का केन्द्रिय तत्व है। इसका आशय है कि जिस प्रकार पृथ्वी समस्त जीवों को धारण करती है, ठीक उसी प्रकार धर्म मनुष्य के आचरण और सामाजिक जीवन को धारण करता है।

“धर्मो धारयते प्रजाः” का आशय यह है कि धर्म केवल व्यक्तिगत साधना की ही विषय नहीं है, बल्कि उसका सामाजिक पक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अतः धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय परंपरा में धर्म का वास्तविक स्वरूप संकीर्ण धार्मिक पहचान में नहीं, बल्कि उन नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों में निहित है जो व्यक्ति, समाज और समस्त प्रजा को धारण करते हुए लोकमंगल, सामाजिक समरसता और व्यवस्था की स्थापना करते हैं।

एकः प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति ।

एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम् ॥

असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः ।

ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च ।।  
 मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ।  
 मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः ।।  
 तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति ।  
 तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः ।।  
 प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गगतिं पराम ।  
 तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते ।।  
 तस्मात्पापागतैरर्थैर्नानुरज्येत पण्डितः ।  
 धर्म एको मनुष्याणां सहायः परिकीर्तितः ।।  
 लोभान्मोहादनुक्रोशाद्भयाद्वाथ बहुश्रुतः ।  
 नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः ।।  
 धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितयं जीवतः फलम ।  
 एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम् ।।<sup>16</sup>

यह श्लोक ब्रह्मपुराण, से लिया गया है जिसका अर्थ है— मनुष्य इस संसार में अकेला जन्म लेता है और अंततः अकेला ही मृत्यु को प्राप्त होता है। माता—पिता, भाई—बहन, पुत्र, गुरु, ज्ञातिजन, संबंधी एवं मित्र जीवन में उसके सहायक होते हैं किन्तु मृत्यु के पश्चात् कोई भी उसके साथ नहीं जाता है। मृत शरीर को भी अंततः परिजन छोड़ देते हैं। मनुष्य के साथ उसके सांसारिक संबंध, शरीर और भौतिक संपत्तियां नहीं जातीं किन्तु धर्म उसका त्याग नहीं करता। वह अकेला ही सच्चा सहायक है, इसलिये मनुष्य को सदा धर्म का आचरण करना चाहिए।

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति ।

धर्मेण पापमपनुदति, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम् । तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति ।<sup>17</sup>

धर्म सम्पूर्ण जगत् की प्रतिष्ठा है और धर्म पर ही सम्पूर्ण संसार टिका है। धर्म का आचरण करने से ही सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। धर्म में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है।

धर्मो हि वीर्यं ध्रियते हि धर्मः ।

धर्मो धृतो धारयते हि रूपम् ।।<sup>18</sup>

धर्म वस्तु का वीर्य है, अर्थात् वस्तु का सामर्थ्य है, जो उसकी सतत रक्षा करता है। वस्तु के रक्षक उस वीर्य को धर्म इसलिये कहते हैं कि वह वस्तु के द्वारा 'धृत' होता है, अर्थात् धारण किया जाता है, अतः ध्रियते इति धर्मः — इस निर्वचन के आधार पर वह 'धर्म' कहा जाता है।

उदाहरण:- जैसे औष्ण्य — वीर्य अग्नि का धर्म है, वह जब तक है तभी तक अग्नि स्व-स्वरूप में प्रतिष्ठित है। उसके विनष्ट होने पर अग्नि भी नष्ट हो जाता है। उसके विनष्ट होने पर अग्नि भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार 'धर्म' का अपार पर्याय वीर्य है।

यतो धर्मस्ततो जयः।<sup>19</sup>

अर्थात् जहाँ धर्म विराजता है वहीं जय होती है।

मन्त्रब्राह्मणयोर् वेदनामधेयम्।<sup>20</sup>

वेद के दो भाग हैं— मन्त्र और ब्राह्मण। मन्त्र और ब्राह्मण को सम्मिलित रूप में अपौरुषेय वेद मानकर ही धर्म का निर्णय होता है।

रामो विग्रहवान् धर्मः।<sup>21</sup>

वाल्मीकि रामायण के आरण्यकाण्ड में श्रीराम को साक्षात् धर्म कहा गया है।

भीष्म पितामह द्वारा युधिष्ठिर को सर्वोत्तम धर्म का व्याख्यान<sup>22</sup>

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमीमो मतः।

यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चयन् सदा।।

महाभारत का युद्ध समाप्त होने के बाद महाराज युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से पुछा कि सर्वोत्तम धर्म क्या है तो पितामह ने निःसंकोच उत्तर दिया— मुझे तो सर्वोत्तम धर्म यही लगता है कि मनुष्य सदा भक्ति पूर्वक कमल-दल—नयन श्रीकृष्ण की अर्चा, पूजा करते रहे।

महाभारत के मतानुसार “धर्म” वह वस्तु है जो प्राणिमात्र के भरण —पोषण —धारण अर्थात् योगक्षेम—विधान में समर्थ हो। अभिप्राय यह है कि यह मनुष्य जीवन प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। यह जन्म प्राप्त करके यदि मनुष्यत्व की रक्षा न की जाय तो पुनः जडत्व की प्राप्ति हो जाती है। धर्म चेतना को प्रबुद्ध करता है, जगाता है। धर्म केवल मनुष्यत्व का ही रक्षक नहीं, मनुष्य में रहकर प्राणिमात्र का रक्षक है। इसी से मनुष्य के व्यवहार में दूसरे प्राणियों के प्रति हिंसा भाव का निषेध है। वस्तु के वस्तुत्व को सुरक्षित रखना और विकसित करना धर्म का काम है।<sup>23</sup>

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति।।

(श्रीमद्भागवत महापुराण प्रथम स्कन्ध द्वितीय अध्याय श्लोक-6)

सूत जी शौनकादि मुनियों से कह रहे हैं—

परम धर्म है जिहीं भक्ति भगवत में होवे।

होवे हरषित हियो, मलिनता मन की खोवे।।

हेतुरहित निष्काम भक्ति अति सरस सुहाई।

सब शास्त्रनि को सार यही मेरे मन भाई।।

शौनकजी! सच-सच कहूँ, सब शास्त्रनि सम्मत जिहीं।

भक्ति भनी भागीरथी, विषयवासना विष कही।।<sup>24</sup>

मानव मात्र का सबसे उत्तम परम धर्म वही है, जिसके आचरण करने से भगवान् में निष्काम और अव्यभिचारिणी भक्ति हो जाय तथा जिससे अन्तरात्मा सदा प्रफुल्लित और प्रसन्न रहे।

#### समापन

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि धर्म केवल पूजा-पद्धति, कर्मकाण्ड अथवा किसी विशेष सम्प्रदाय से संबंधित आस्था का विषय नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन को उचित दिशा प्रदान करने वाली व्यापक जीवन-दृष्टि है। भारतीय चिंतन परम्परा में धर्म का संबंध व्यक्ति के आचरण, कर्तव्य, सत्य, संयम, करुणा, सदाचार तथा लोककल्याण से जोड़ा गया है। धर्म मनुष्य को केवल अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं करता, बल्कि अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के निर्वहन की प्रेरणा भी देता है।

शास्त्रीय परम्परा में धर्म को जीवन की ऐसी आधारभूत व्यवस्था के रूप में देखा गया है, जो व्यक्ति, परिवार, समाज और समस्त सृष्टि के मध्य संतुलन स्थापित करती है। इस दृष्टि से धर्म का वास्तविक स्वरूप बाहरी प्रदर्शन में नहीं, बल्कि मनुष्य के आचरण और उसके व्यवहार में प्रकट होता है। जब धर्म सत्य, अहिंसा, दया, सेवा, त्याग, आत्मसंयम और परोपकार के रूप में जीवन में उतरता है, तब वह व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करता है और समाज में सद्भाव एवं नैतिकता को सुदृढ़ करता है।

धर्म की सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब वह मनुष्य के भीतर सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न करे। केवल धार्मिक अनुष्ठानों का पालन करते हुए यदि व्यक्ति के व्यवहार में सत्य, करुणा, सहिष्णुता और मानवता का अभाव है, तो धर्म की मूल भावना अधूरी रह जाती है। इसके विपरीत, जब धर्म मनुष्य को अपने कर्तव्य के प्रति सजग करता है और उसे दूसरों के सुख-दुःख के प्रति संवेदनशील बनाता है, तब वह व्यक्तिगत साधना से आगे बढ़कर लोकमंगल का माध्यम बन जाता है।

वर्तमान समय में विज्ञान, तकनीकी विकास और भौतिक सुविधाओं में निरन्तर वृद्धि हुई है, परंतु इसके साथ मानसिक तनाव, सामाजिक असंतुलन, नैतिक संकट और मानवीय संबंधों में दूरी जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। ऐसी परिस्थिति में धर्म की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है। धर्म यदि अपने मूल मानवीय स्वरूप में समझा जाए, तो वह आधुनिक मनुष्य को भौतिक प्रगति के साथ नैतिक विवेक, आत्मानुशासन और मानवीय संवेदना प्रदान कर सकता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि धर्म का अंतिम उद्देश्य मनुष्य को श्रेष्ठ आचरण की ओर ले जाना, उसके जीवन को कर्तव्यबोध से जोड़ना तथा व्यक्तिगत उत्थान के साथ समाज और समस्त प्राणी-जगत के कल्याण की भावना को विकसित करना है। धर्म व्यक्ति को भीतर से परिष्कृत करता है और उसके माध्यम से परिवार, समाज तथा राष्ट्र के जीवन में भी सकारात्मक परिवर्तन संभव होता है। इसलिए धर्म को केवल किसी धार्मिक पहचान के रूप में न देखकर सत्य, सदाचार, कर्तव्य, करुणा और लोककल्याण पर आधारित जीवन-पद्धति के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है। यही दृष्टिकोण भारतीय धर्म-दर्शन की व्यापकता को स्पष्ट करता है और आधुनिक युग में भी धर्म की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता को स्थापित करता है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**

- 1—दीपक आचार्य, वैदिक सनातन धर्म (शंका समाधान), प्रथम संस्करण, 2024, स्थितप्रज्ञ संस्थान, रायपुर, ISBN: 978-93-341-4606-6.
  - 2—कौण्डिन्यायन, शिवराज आचार्य, मनुस्मृति, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन, 2021।
  - 3—कौण्डिन्यायन, शिवराज आचार्य, मनुस्मृति: द्वितीय अध्याय श्लोक 12 वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन, 2021।
  - 4—कौण्डिन्यायन, शिवराज आचार्य, मनुस्मृति: षष्ठम अध्याय श्लोक 92 वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन, 2021।
  5. वैशेषिकसूत्र 1/1/2
  6. जैमिनीय धर्ममीमांसा सूत्र 1/1/2
  7. वसिष्ठ धर्मसूत्र 1/45
  8. महाभारत, अनुशासनपर्व 141/65
  9. देवीभागवत पुराण 7/39/15
  10. देवीभागवत पुराण 11/1/21
  11. श्रीमद्भागवत महापुराण 6/1/40
  12. स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड 3/11/17
  13. मनुस्मृति 2/6
  14. मनुस्मृति 2/1
  - 15— महाभारत, कर्ण पर्व, 69.58।
  - 16— ब्रह्मपुराण अध्याय 217, श्लोक 4-11।
  - 17— राधेश्याम खेमका (सम्पादक), कल्याण-धर्मशास्त्रांक, गोरखपुर, गीताप्रेस, पृ.112।
  - 18— राधेश्याम खेमका (सम्पादक), कल्याण-धर्मशास्त्रांक, गोरखपुर, गीताप्रेस, पृ.130।
  - 19— महाभारत, भीष्म पर्व 21/11।
  - 20— गौतमधर्मसूत्रम् प्रमोदवर्धन कौण्डिन्यायन (व्याख्याकार). चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2015।
  - 21— वाल्मीकि रामायण ,आरण्यकाण्ड, सर्ग 37, श्लोक 13।
  - 22— राधेश्याम खेमका (सम्पादक), कल्याण-धर्मशास्त्रांक, गोरखपुर, गीताप्रेस, पृ.103।
  - 23— राधेश्याम खेमका (सम्पादक), कल्याण-धर्मशास्त्रांक, गोरखपुर, गीताप्रेस, पृ.67।
  - 24— राधेश्याम खेमका (सम्पादक), कल्याण-धर्मशास्त्रांक, गोरखपुर, गीताप्रेस, पृ.70।
-